International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 10 Issue 4, July-August, 2022, Impact Factor: 7.326

भारतीय महाकाव्यों में भारतीय संस्कृति

डॉ. प्रियंका

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, महारानी किशोरी मेमोरियल कन्या महाविद्यालय, होडल, हरियाणा

संस्कृति आचार्यो ने काव्य या साहित्य की परिभाषा और स्वरुप पर विचार करते हुए इसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष से संस्कृति, मूल्यों, जीवन-मूल्यों, जीवनादर्शों की बात का महत्व दिया है। काव्य को जब ' सत्यं शिवं सुंदरम ' को सांचे की दृष्टि से देखते है तो वहाँ भी इसका ' सत्य ' पक्ष यदि यथार्थ के लिए आग्रहशील दिखता है तथा ' सुंदरम ' उसके रुचिकर पक्ष पर बल देता दिखाई देता है परन्तु साहित्य की केंद्रीय भूमिका तो शिवम् की ही अधिक मानी जाती है। '' सत्यं ' और ' सुंदरम ' की साधना में साधक दिखाई देते है। ' सत्यं ' और 'सुंदरम ' साधन हैं तो साध्य शिवम् ही दिखता है। सभी युगो के साहित्य का दावा भी यही रहता है की वह शिवम् के हेतु रचा गया है।

संस्कृति और साहित्य का साध्य- साधक सम्बन्ध माना जा सकता है अर्थात संस्कृति साध्य है और साहित्य आदि सभी कलाएँ साधन है। संस्कृति अर्थात मनुष्य के श्रेष्ठ भाव, विचार एवं कार्यो की अभिव्यक्ति ही साहित्य का लक्ष्य होती है। प्रत्येक युग किन्ही विसंगतियों से प्रभावित एवं पीड़ित होता है। साहित्यकार ऐसी विसंगतियों एवं पीड़ाओं का उल्लेख करके, चित्रण करके उनसे बाहर निकलने का मार्ग अपने साहित्य में प्रस्तुत करता है। ये मार्ग ही जीवन मूल्य होते है। " भारतीय संस्कृति के प्रारम्भिक काल में साहित्यिक रचनाएँ कभी वेद के रूप में, कभी ब्राह्मणो के रूप में सामने आई और इसके बाद रामायण, महाभारत में तथा फिर कालिदास, माघ, आदि के युग में भारतीय संस्कृति का यह स्वर्ण युग कहलाता है।"

भारतीय संस्कृति को पारिभाषिक करना कठिन है। इसकी एक लम्बी परंपरा है तथा इस परंपरा में अनेक आरोह- अवरोह है। ये आरोह - अवरोह समय पर हमारी संस्कृति में कुछ घटाते - बढ़ाते रहे है। हमारी संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का योगदान भी रहा है। अत: भारतीय संस्कृति विविध परिस्थितियों एवं कालों में कुछ न कुछ नूतन रूप धारण करती रही है। उन्नीसवीं शताब्दी में जैसे - जैसे विज्ञान का प्रभाव पश्चिम से भारत की ओर आया है तो हमारी संस्कृति मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओ का ही संयुक्त रूप है।

इसलिए कह सकते है कि - " इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को बाँधे हुए है तथा जिसकी रचना ओर विकास अनेक सदियों में अनुभवों का हाथ है। " संस्कृति का कार्य हमें बाँधना ही नहीं अपितु हमारे विकास, परिष्कार, एवं सुख समृद्धि का साधन एवं मार्ग दिखाना है।" अत: जिन चेष्टाओं द्वारा मनुष्य अपने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उन्नति करता हुआ सुख शांति प्राप्त करता है। वे ही संस्कृति कही जा सकती है अथवा मनुष्य के लौकिक- पारलौकिक अभ्युदय के अनुकूल आचार- विचारो को सांस्कृतिक कहा जा सकता है। "

संस्कृति किसी भी देश, जाति अथवा मानव के आन्तरिक गुणों की सामूहिकता का नाम है। सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति हमारे भावो, विचारो एवं व्यवहारों द्वारा होती है। इसका अभिप्राय सांस्कृतिक तत्वों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. भावमूलक संस्कृति
2. विचारमूलक संस्कृति
3. व्यवहारमूलक संस्कृति

संस्कृति का अभिप्राय वे जीवन मूल्य होते है जो युगो - युगो से उस समाज, जाति के भाव बन जाते है। अर्थात हृदयगत पवित्र, पुनीत चेतना को भाव कहते है तो मन में विधमान सात्विक एवं मानव कल्याण के उपादान (कारण) तत्त्व सांस्कृतिक तत्त्व माने जाते है।

भारतवर्ष में प्रथम साहित्यिक कृति (रामायण) की उदभावना ही महृषि वाल्मीकि के हृदय में उपजी करुणा- दया भाव से ही होती है। अत: यह भाव तो हमारा सांस्कृतिक चेतना का प्रस्थान बिंदु मानी जा सकती है। संपूर्ण बोध धर्म- दर्शन का आधार अहिंसा- दया- करुणा भाव ही तो है। 'निर्वाण' महाकव्य बोध धर्म -दर्शन की पृष्टभूमि में रचा गया महाकाव्य है। अत: इसमें दया करुणा-अहिंसा का विधमान होना स्वाभाविक है। नन्द और गौतम में हंस पक्षी 'शिकार' में यही भाव एक बड़े घटनाक्रम को जन्म देता है। इसी प्रकार 'निर्वाण' में गौतम के मन में यह भाव तब तक जन्म लेता है जब एक घोड़े को उसके रथ का सारथि चाबुक से मारता है। दया- करुणा- अहिंसा जिस भाव को उत्पन्न करता है वह है प्यार। अनुराग महाकाव्य में महाकवि प्यार (प्रेम) के उदात्त रूप को विस्तार से स्पष्ट किया है। प्यार वासना नहीं है। उदात्त प्यार में कर्त्तव्य, कर्म, पीड़ा ही पीड़ा है। अर्थात परहित चिन्तन, परहित कर्। परपीड़ा निर्मूलन ही प्यार का लक्षण होता है। जहा प्यार होता है वहाँ क्षमा भाव भी विधमान रहता है। क्षमा देने से अधिक संस्कृति बोध क्षमा माँगने में होता है।' अनुराग ' काव्य में 'गंगा' अपने जीवन की अनुभूति या देवलोक गमन करने की अपनी विवशता- आवश्यकता को अनुभव करते हुए पति शांतनु से क्षमा मांगती है।

भारतीय जीवन मूल्यों में विश्वास भाव का अत्यधिक महत्व रहा है। आत्म विश्वास अपने विकास एवं उदात्तीकरण के लिए तथा अन्य पर विश्वास जगा विकास के लिए आवश्यक होता है सकारात्मक भावो या जीवन मूल्यों में श्रद्धा, सदभाव, कृतज्ञता का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये मनोभाव जीवन को सद्कार्यो में लगाते ही नहीं अपितु सद्कार्यो को करने की औरों को भी प्रेरणा देते है। ऐसे मनोभावों को भी कवि ने अपने महाकाव्यों में प्रचुर स्थानों पर दर्शाने का अवसर मिलता है। बड़ों को अच्छो का सम्मान करना, सम्मान पाने के लिए अच्छा बनना या बनने का प्रयत्न भी जीवन को उत्कर्ष की और ले जाता है। अनुराग में देवव्रत पिता शांतनु की इच्छा का सम्मान करते हुए भी भीष्म प्रतिज्ञा लेता है और अपने को बलिदान भाव से सदा- सदा के लिए अमर बना लेता है। 'शकुंतला' में भी शकुंतला का संघर्ष ओर त्याग उसे सम्मानीय बना देता है। 'महारानी दमयन्ती' दमयन्ती का सौंदर्य प्रेम से अधिक उसके जीवन मूल्यों की विशेष गाथा है। निर्वाण में 'यशोधरा' का विरह वेदना सहना परन्तु पति के उत्थान में सहमत होना ही उसे सम्मानीय बना देता है। गौतम साधना, समाधि और निर्वाण प्राप्ति से ही सम्मान के योग्य बनते है।

भारतीय संस्कृति में कर्मवाद या कर्मसिद्धांत अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कर्मवाद को सगुण - निर्गुण, आस्तिक- नास्तिक दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'निर्वाण' महाकाव्य में इसकी बहुत व्यापक चर्चा की गई है। 'निर्वाण' में कहा गया है की मृत्यु के उपरान्त प्राणी के साथ केवल उसके कर्म ही जाते है। भारतीय संस्कृति के अनुसार-मनुष्य के साथ केवल कर्म ही जाते है तथा इन कर्मो के फलस्वरूप ही नवजीवन प्राप्त होता है अर्थात अच्छे कर्मो का फल अच्छा होता है ओर अच्छे कर्मो का अगले जन्म में अच्छा फल मिलता है। पुनर्जन्म भी भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। यह कर्म का बंधन माना गया है तथा इस बंधन से मुक्ति नहीं मिलती है। मनुष्य जब-जब देह धारण करता है उसे कर्म- बंधन में बंधना ही पड़ता है। गौतम की अवधारणा के अनुसार मनुष्य के बुरे कर्म ही उसे पुनर्जन्म के लिए विवश करते है। अच्छे कर्म तो मनुष्य को मोक्ष का अधिकारी बना देते है और ऐसे कर्म करने वालो को नवबंधन से मुक्ति मिल जाती है। शरीर को

पंचतत्व का संयुक्त रूप माना जाता है जोकि एक वैज्ञानिक सत्य भी है। मृत्यु के बाद पूर्ण शरीर पंचतत्व में विलीन हो जाता है या वे शरीर में से अपना -अपना तत्त्व वापस ले लेते है।

मनुष्य के कर्म उसकी नियति का निर्माण करते है। कर्म प्रतिपल व्यक्ति की नियति का निर्माण करते रहते हैं। नियति के परिणाम जैसे भी हो हमारे सामने उपस्थित हो ही जाते है। नियतिवाद के कारण बौद्ध दर्शन में ईश्वर की स्थिति की उपेक्षा की गई है। जन्म मृत्यु पुनर्जन्म सभी कर्मो के अधीन है। कर्मानुसार स्थिति बनती है, नियति अनुसार व्यक्ति सुख-दुःख भोगता है। इस प्रकार ये सांस्कृतिक अवधारणाएं भी व्यक्ति को सत्संस्कार ही प्रदान करती हैं। जीवन का आदर्श मार्ग दिखाते हैं। जीवन को अपने लक्ष्य या आदर्श तक ले जाते हैं। इसलिए जीवन मूल्य या संस्कृति कहलाते हैं। व्यावहारिक संस्कृति में सहयोग सर्वोत्तम जीवन मूल्य है। असहयोग पशु जीवन का लक्षण तो हो सकता है परन्तु मानव जीवन का नहीं। सहयोग हमारी अन्त: वृतियो की मानवीय चेतना का सबसे प्रत्यक्ष मान और कल्याणकारी मूल्य है। सहयोग हमारी मानवीय एवं सामाजिक चेतना का बोधक व्यवहार एवं संस्कार है। धर्म भी करणीय एवं व्यावहारिक जीवन-मूल्य है जिसका चिन्तन एवं इच्छा ही कार्य रूप या क्रिया रूप में ही अपनी पूर्णता प्राप्त करती है। वस्तुत: इस जगत में प्राणी का आगमन ही कर्म करने के लिए होता है। गीता भी हमें कर्म करने की ही प्रेरणा और अधिकार देती है। अन्यो का सम्मान करना, गुणी और विद्वानों के सम्मान करने से गुण और विद्वता में विस्तार होता है। भारतवर्ष महापुरुषों, ऋषिजनो, अच्छी बातो के सम्मान का संकेत करते आए है। सम्मान की अभिव्यक्ति का माध्यम दूसरो का अभिवादन, प्रणाम आदि की प्रक्रिया है। भारतीय संस्कृति एवं व्यव्हार का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इस आदर्श भाव की स्थिति केवल व्यक्ति सम्मान तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि अच्छे चिन्तन एवं भावो का सम्मान करना भी उन्हें समाज में सम्मान दिलाने जैसा है। इससे अच्छे भाव विचारो में विस्तार होता है।

भारतीय जीवन शैली संस्कार मूल जीवन शैली है। हमारे यहाँ पूर्ण जीवन में गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारो का विधान है। इससे जीवन के समग्र को समझने का अवसर मिलता है। महारानी दमयंती के पुत्री के नामकरण, गौतम के नामकरण संस्कारो को दोनों महाकाव्यों में स्पष्ट उल्लेख-विवरण मिलता है। यज्ञ अनुष्ठान और उसमे यजमान कल्याण, समाज कल्याण, मानव कल्याण के मंत्रोच्चारण की परंपरा एवं हमारी ऋषि परंपरा की पहचान है। आश्रमों में प्रतिदिन यज्ञ-मंत्रोच्चारण होता है। गृहस्थ में सुखद अवसरों पर ऐसा होता है। समाज भी सामूहिक रूप से इस अनुष्ठान को कराता रहता है। 'मनुष्य एक सामाजिक पशु है' पश्चिम की यह सूक्ति इस बात की ओर संकेत कर रही है कि मनुष्य यदि सामाजिकता से रहित हो जाए तो वह पशु ही है। मनुष्य को पशुता से मुक्त करने वाला तत्त्व समाज ही है। समाज शास्त्रियों ने व्यक्तियों के समूह को समाज न मानकर व्यक्तियों के समूह के आपसी सम्बन्धो के संयुक्त रूप को समाज कहा है। समाज के रिश्ते परिवर्तनशील भी होते है। यह परिवर्तन विकास भी माना जा सकता है। इसके कारण अनेक होते है। सामाजिक सम्बन्धो के परिवर्तन की प्रक्रिया, दिशा, एवं कारणों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. उर्मिल गंभीर का मत है - " जीवन के स्वीकृत ढंग में जब अंतर आने लगे, तब सामाजिक परिवर्तन शुरू हो जाता है। चाहे ये अंतर भौगोलिक दिशाओ के कारण आए, चाहे सांस्कृतिक साधनो, आबादी की संरचना व विचारधाराओ में परिवर्तन के कारण आए, जिसका सूत्रपात उसी जनसमूह ने स्वयं किया हो या कही अन्यत्र से लिया हो। समाज की आधारशिला समाज के प्राणियों का दायित्वपूर्ण जीवन निर्वाह करना है। 'महारानी दमयंती' महाकाव्य की नायिका अपनी संतान को सभी प्रकार के संस्कार प्रदान करती है। लोक-परलोक का ज्ञान देती है। उनके प्रति अपनी मंगलकामनाएँ अर्पित करती है। ऐसा दायित्वपूर्ण जीवन जीकर व्यक्ति की महानता ही स्पष्ट नहीं होती अपितु समाज निर्माण की भूमिका भी निभती दिखाई देती है। यदि सभी लोग समाज में अपने उत्तरदायित्व को निभाते है तो इसमें परिवार एवं समाज का कल्याण अवश्य निहित रहता है।

प्रत्येक समाज कभी-कभी कुछ दुर्व्यवस्थाओ से ग्रस्त भी हो जाता है। कवि उनका संकेत ही नहीं करता बल्कि अपने महाकाव्य के पत्रों के द्वारा उनकी असमानता की बुराई एवं समानता की अच्छाई का उल्लेख कर एक

आदर्श समाज के स्वरूप पर प्रकाश डालता है। 'निर्वाण' महाकव्य में बुद्ध सामाजिक असमानता को देखकर खिन्न होते है तथा उसे दूर करने का प्रयास करते है। परिवार भारतीय सामाजिक संरचना का एक महत्वपूर्ण अवयव है। इसके सदस्य आपसी सदभाव, आत्मीय भाव के साथ बंधे होते है। परिवार व्यवस्था में एक संस्कार है 'विवाह' चारो महाकाव्यों में परिवार सम्बन्ध को व्यापक दृष्टि से दिखाया गया है। परिवार से छोटी इकाई दम्पति या पति- पत्नी होते है। परन्तु पति- पत्नी के सम्बन्ध को पूर्णता प्रदान करने वाली पद्ति विवाह मानी जाती है। स्त्री- पुरुष का साथ रहना मात्र परिवार या दाम्पत्य जीवन नहीं होता अपितु वह पाणिग्रहण संस्कार के बाद ही संभव होता है।

शासन व्यवस्था को चलाना राजनीति का अर्थ होता है। राज + निति अर्थात शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाना की पद्ति - नीति। भारतवर्ष में 'रामराज्य' इसकी आदर्श परिकल्पना या आदर्श रूप था। इतना ही नहीं भारतवर्ष में अनेक लोकप्रिय एवं लोकहित चिंतक राजा हुए जिन्होंने राजनीति के अर्थ को गरिमा एवं उदात्तता प्रदान की थी। वर्तमान समय में राजनीति शब्द अपना अर्थ बदल चूका है। अब राज्य चलाना नहीं राज्य को हड़पना, हड़पे रहना तथा अपने लोगो के हितो को सर्वोपरि बनाए रखना हो गया है। आज राजनीति का अर्थ राज या शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाए रखना ही नहीं अपितु इसमें आर्थिक, सामाजिक स्थितियाँ भी सम्माहित होती जा रही है। राजनीति जीवन जगत में अत्यधिक जरुरी हो गई है, जीवन की धुरी हो गई है। "राजनीति से अभिप्राय व्यावहारिक राजनीति से भी है, जिसमे देश और स्वरूप के सामने आने वाली सभी समस्याएँ सम्मलित है। एक देश की राजनीति दूसरे देश की राजनीति से भिन्न होती है"

भारतीय दृष्टिकोण में राजा प्रजापालक ही नहीं वीर भी होना चाहिए। राजा शान्तनु में ये गुण प्रायप्त मात्रा में है। राजा के गुणों का जनता तो बोध कराती ही है। कभी-कभी राजा अपने धर्म-कर्म का स्वयं भी सन्दर्भ में बोध कराता है। राजा दुष्यन्त जब अपनी पत्नी शकुन्तला को शापवश भूल जाते है तो इसके लिए उनकी शूरवीरता को चुनौती दी जाती है। इतना ही नहीं राजा के धर्म और भी है। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए भी राजा को अनेक कार्य करने पड़ते है। कवि ने राजाओ से राजधर्म निभाने की अपेक्षा भी की है।

कवि को यह समता भाव स्थापित करने के लक्षण संत समुदाय में दिखाई देते है। 'निर्वाण' में जब गौतम को एक सन्यासी के दर्शन होते है उसका वैराग्य स्वरूप और चेतना में विश्व कल्याण का भाव भी दिखाई देता है। कवि 'वसुधैव कुटुम्ब्कम' भाव के लिए विश्व के प्रति समिष्ट के प्रति प्रेमभाव को अनिवार्य मानता है।

विश्वशांति ही विष्वभोग का की अनिवार्य स्थिति है महारानी दमयन्ती में ऐसा ही संकेत दमयन्ती अपनी संतति को शिक्षा देते हुए करती दिखती है। शौर्य पराक्रम एवं ज्ञान से ही विश्व शांति को स्थापना का लक्ष्य महात्मा गौतम भी निश्चित करते दिखते है। और महात्मा बुद्ध विश्व शांति के इसी मार्ग पर चलने का निश्चय कर लेते है और एक कठोर साधना का मार्ग निश्चित कर लेते है। इस साधना की सफलता के फल अर्थात व्यष्टि-समष्टि शांति को ही वे विश्व को बाटेंगे।

कवि विश्व को अन्याय, अनीति एवं वैर भाव से मुक्ति में ही विश्व कल्याण की स्थिति देखते है। विश्व कल्याण खोजने की इच्छा गौतम में प्रारम्भ से ही दिखाई देती है। जगत में दीनता,दुःख, संत्रास देखकर उनका मैं विचलित रहता है। उनकी इस चेतना के कारण तो विद्वान असित ने बचपन में ही बता दिए थे। ये लक्षण उन्हें जन्म-जन्मान्तरो (पूर्व जन्मो) से मिले हुए थे। वर्तमान जन्म तो इन्हे पूरा करने के लिए था। व्यक्ति जब तक अपनी संकुचित दृष्टि से बंधा रहेगा, विश्व का कल्याण संभव नहीं होगा। विश्व कल्याण और शांति के लिए आत्म विस्तार की आवश्यकता है। यह आत्मविस्तार का भाव भौगोलिक एवं वैचारिक दोनों प्रकार का हो सकता है। संस्कृति के जिन पक्षों को यहाँ प्रस्तुत किया गया है वे तो अत्यधिक सीमित है। अन्यथा तो केवल संस्कृति पक्ष पर ही एक शोध कार्य हो सकता है हमारा अतीत और हमारा मानस भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से परिपूर्ण है।

फिर भी यह अत्यधिक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक मान बिन्दुओ की चर्चा भी विराट भारतीय संस्कृति की परिचालक है।

सन्दर्भ सूची

[1]. डॉ. रामधारी सिंह दिनकर के चार अध्याय, पृ 653,654
[2]. प्रोफेसर आदेश निर्वाण, पृ 23, 78, 110, 215, 219, 223, 232
[3]. प्रोफेसर आदेश अनुराग, पृ 58, 62, 183, 190, 207-215
[4]. प्रो. आदेश महारानी दमयंती, पृ 232, 233, 235, 309
[5]. मारिस गिन्सबर्ग सोशोलोजी, पृ 10
[6]. डॉ. राजेश कुमारी, नरेश मेहता का काव्य: मूल्य और मूल्यांकन, पृ 114, 154
[7]. प्रो. आदेश महारानी दमयन्ती पृ. 312, 316, 319